International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 26-02-2022, Accepted: 13-03-2022, Published: 28-03-2022
Volume 8, Issue 2, 2022, Page No. 43-47

अंधायुगः आधुनिक समय का दस्तावेज

मीनाक्षी
सहायक प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, माता सुन्दरी कॉलेज फॉर वूमेन, दिल्ली, भारत

सारांश
धर्मवीर भारती कृत गीतिनाट्य 'अंधायुग' में वर्णित कथा (अतीत) के माध्यम से आधुनिक युग और परिस्थितियों की समस्याओं की मार्मिकता को उजागर किया गया है। इस गीतिनाट्य में आधुनिक युग की मूल्यहीनता, चरम हताशा, भय, निराशा, संदेह, चारित्रिक पतन, भ्रष्ट आचरण, सामाजिक ह्रास, नैतिक मूल्यों के प्रति अविश्वास, ईश्वर में आस्था और अनास्था आदि विषयों को विभिन्न चरित्रों और परिस्थितियों के माध्यम से दिखाया गया है। युद्धोपरांत ह्रासोन्मुखी संस्कृति, ईश्वरत्व और मनुष्यत्व दोनों का विनाश और वर्तमान समय के मनुष्य की मनोग्रंथियों को पुराने संदर्भों के माध्यम से उजागर किया गया है। 'वर्तमान युग में ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो चुकी है, जिसमें अपनी नियति के इतिहास निर्माण के सूत्र मनुष्य के हाथों से छूटे हुए लगते हैं। मनुष्य दिनोंदिन निरर्थकता की ओर अग्रसर होता प्रतीत होता है। यह संकट केवल आर्थिक या राजनीतिक संकट नहीं है वरन् जीवन के सभी पक्षों में समान रूप से प्रतिफलित हो रहा है। यह केवल पश्चिम या पूर्व का नहीं वरन् समस्त संसार में विभिन्न धरातलों पर विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है।'[1]

मूल शब्दः अंधायुग, धर्मयुद्ध, विभीषिका, भविष्य की चेतावनी, आस्था और अनास्था, नैतिक मूल्य, राजसत्ता

प्रस्तावना
यह गीतिनाट्य पांच अंकों और आठ भागों में विभक्त है। नाटक में कुल सोलह पात्र है, जिसमें पन्द्रह पुरुष पात्र और एक स्त्री पात्र है। इसकी कथा महाभारत के अट्ठारहवें दिन से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु तक वर्णित है। गिरीश रस्तोगी अंधायुग के कथानक पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं। ''सारा कथानक सुनियोजित, गतिशील, प्रभावपूर्ण, कल्पना की सक्षमता से गूंथा हुआ है।''[2] इसमें रंगमंचीय प्रयोग देखने को मिलते है। नाट्यकृति के आरंभ में ही 'निर्देश' शीर्षक के अंतर्गत विभिन्न रंग–संकेत दिए गए हैं। 'निर्देश' के अंतर्गत ही अंक विभाजन, कथागायन, मंचविधान, संवाद, मंच शैली, ध्वनि, प्रकाश और दृश्य संबंधी रंग–संकेत दिए हैं। कथावस्तु प्रतीकात्मक है, जिसके कारण कम से कम शब्दों में ही अधिक से अधिक अर्थ ग्रहण करने की शक्ति एवं व्यंजकता आ गई है। इसकी कथावस्तु के विषय में धर्मवीर भारती लिखते हैं– ''कथावस्तु प्रख्यात है। केवल कुछ ही तत्व उत्पाद्य है, कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएँ।''[3] इस गीतिनाट्य का आकाशवाणी पर प्रसारण भी हो चुका है। इसके सैकड़ों सफल मंचन हो चुके हैं। इस नाटक का सफल मंचन करने वालों में इब्राहिम अलकाजी, सत्यदेव दुबे, मोहन महर्षि, रवि वासवानी आदि विभिन्न रंग–निर्देशक रहे हैं।

धर्मवीर भारती ने महाभारतकालीन विभिन्न पात्रों और चरित्रों को 'सत्–असत्' वर्ग में देखने की जगह मानवीय धरातल पर देखने का प्रयास किया है। यह नाटक मुख्यतः दोनों विश्वयुद्धों तथा भारत–पाकिस्तान विभाजन की त्रासदी से भी जुड़ता है। मनुष्य की अतिशय महत्वाकांक्षा, लोभ और लालच का नतीजा स्वयं उसको भुगतना पड़ता है। युद्धोपरांत अमानवीयता अपने चरम पर होती है। धर्मवीर भारती के शब्दों में –

> ''युद्धोपरांत/यह अंधा युग अवतरित हुआ/जिसमें स्थितियां, मनोवृतियां, आत्माएं सब विकृत है/है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की/पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में/सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का/वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त/पर शेष अधिकतर है अंधे/पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित/अपने अंदर की अंधगुफाओं के वासी/यह कथा इन्हीं अंधों की है/या कथा ज्योति की है, अंधों के माध्यम से।''[4]

इस नाटक की कथा के माध्यम से लेखक ने युद्ध की विभीषिका और उसके भयानक परिणामों को दिखाया है। इस नाट्य रचना के उद्देश्य के बारे में सुरेश गौतम लिखते हैं– ''नैतिक मूल्यों से कुंठित, स्वार्थान्ध, मर्यादाहीन उस युग को युद्ध की दारूण विभीषिका में भस्मित करने के पश्चात् आस्था, विश्वास और सृजन की कसौटी पर कुन्दन बनी जो चेतना कृष्ण के व्यक्तित्व से उद्भासित होकर विकीर्ण होती है, वही इस नाटक का केन्द्रीय भाव, उद्देश्य है।''[5] मनुष्य किसी भी प्रकार के युद्ध में सत्य अथवा असत्य किसी भी पक्ष में रहे, पर अंततः उसका दुष्परिणाम सम्पूर्ण मानवजाति को भुगतना पड़ता है। युद्ध में होने वाली हिंसा–प्रतिहिंसा, विनाश, षड्यंत्र, मनुष्यता के गुणों का ह्रास करते हैं, जो युद्ध में गंवा दिया, उसे किसी हालत में वापस नहीं पाया जा सकता है। धर्मवीर भारती इस कथा के माध्यम से मनुष्य के अस्तित्व पर मंडराते खतरे के प्रति चेतावनी देते हैं। युद्धोपरांत सरसरी तौर पर देखने पर एक पक्ष की जीत और दूसरे पक्ष की हार दिखाई देती है। वास्तविकता तो यह है, युद्ध में जीत किसी भी पक्ष की नहीं होती बल्कि समस्त मानवता लहूलुहान हो जाती है। मनुष्यता की तो हार ही हार होती है –

''टुकड़े–टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा/उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है/पाण्डव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज्यादा''[6]

लेखक सभी मनुष्यों, राज सत्ताओं तथा सम्पूर्ण विश्व को युद्ध की विभीषिका से परिचित करवाकर चेतावनी देता है। युद्धोपरांत मनुष्य में नैतिक तथा मानवीय मूल्यों का ह्रास हो जाता है। मनुष्य में जो भी शुभ, कोमलता, ग्राहय सभी लक्षण नष्ट हो जाते हैं। अनेक मानवीय और सामाजिक मूल्य, सत्य, ईमानदारी, प्रेम, धैर्य, न्याय, संतोष, शांति, अहिंसा, त्याग और सदाचार आदि मिट जाते हैं। जिस समाज में नैतिक और मानवीय मूल्य नष्ट हो जाते हैं, मनुष्य का विवेक और नैतिकता समाप्त हो जाती है। वहां न तो मानव, न ही सम्पूर्ण समाज विकास तथा उन्नति कर सकता है।
अंधायुग में धर्मवीर भारती ने ऐसी स्थितियों को दिखाया है, जहां सभी प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक, मानवीय तथा नैतिक मूल्य नष्ट हो चुके हैं। आस्था की जगह अनास्था, शांति की जगह अशांति, सहानुभूति की जगह प्रतिहिंसा, मनुष्यत्व की जगह पशुत्व का बोलबाला है। मानवीय वैयक्तित्व का विघटन हो चुका है। समाज में बलशाली और सम्पतिशाली का राज है। उसी का सिक्का चलता है और उसी का डंका बजता है। इस नाटक में युद्ध के उपरांत सभी की आस्था टूटी है परन्तु विशेष रूप से अश्वत्थामा, गांधारी, धृतराष्ट्र और युयुत्सु में अनास्था का भाव अधिक है। युधिष्ठिर के अर्धसत्य (अश्वत्थामा हतः नरो व कुंजरोवा) तथा पिता की निर्मम हत्या किए जाने के बाद अश्वत्थामा अनास्थावादी, बर्बर, विवेकहीन, प्रतिशोध तथा प्रतिहिंसा से युक्त पशु के समान व्यवहार करता है –

''भूल नहीं पाता हूं/मेरे पिता थे अपराजेय/अर्द्धसत्य से ही/युधिष्ठिर ने उनका/वध कर डाला/उस दिन से/मेरे अंदर भी/जो शुभ था, कोमलतम था/उसकी भ्रूण–हत्या युधिष्ठिर के/अर्धसत्य ने कर दी''[7]

अश्वत्थामा सभी मूल्यों को एक–एक कर तोड़ता है। अपने जीवन तथा भविष्य की चिंता भी करता है। वह अपने अस्तित्व को नष्ट करने के बारे में भी सोचता है –

''मैं क्या करूंगा/हाय मैं क्या करूंगा?/वर्तमान में जिसके/मैं हूं और मेरी प्रतिहिंसा/एक अर्द्धसत्य ने युधिष्ठिर के/मेरे भविष्य की हत्या कर डाली है''[8]

भविष्य की अनिश्चितता उसे और अधिक प्रतिहिंसा के गहरे कुंए में धकेलती है। अश्वत्थामा जल्दी ही अपने अस्तित्व की सार्थकता या जीवन जीने का लक्ष्य ढूंढ लेता है। यह अर्धविक्षिप्त पात्र दूसरे मनुष्य का वध करने पर उतारू हो जाता है –

''वध, केवल वध, केवल वध / अंतिम पथ बने / मेरे अस्तित्व का''[9]

अश्वत्थामा के लिए किसी अन्य व्यक्ति का वध करना किसी युद्ध नीति का अंग नहीं है। वध करना तो उसके जीवन का अनिवार्य अंग बन चुका है। प्रतिहिंसा में वह एक मनोरोगी बन जाता है –

''वध मेरे लिए नहीं रही नीति / वह है अब मेरे लिए मनोग्रंथि''[10]

वह मनुष्यता की हर सीमा को तोड़ता है। वह हृदयहीन बच्चों को भी मारने से पीछे नहीं हटता और उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र चला देता है। सुरेश गौतम के शब्दों में – ''अश्वत्थामा की यह पशुता एवं बर्बरता आधुनिक विश्वजीवन में भी वर्तमान है, जो निकटवर्ती अतीत के दो आणविक महायुद्धों की देन है। आज के विश्वजीवन में उसी प्रकार की विक्षिप्तता, शून्यता, अनास्था, कुण्ठा, अविश्वास एवं निराशा दिखाई पड़ती है, जो कभी महाभारत अथवा 'अन्धा युग' के अभिशप्त पात्र अश्वत्थामा में निहित थी।''[11] वर्तमान समय में, आधुनिक मानव उसी प्रकार की मनोवृत्तियों से परिचालित है। वह दूसरे को कष्ट पहुंचाकर ही अपने अस्तित्व को सार्थक पाता है। इसी कारण उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व धूमिल और निस्तेज पड़ जाता है।
गांधारी कृष्ण को वंचक कहकर अपनी अनास्था प्रकट करती है। उसकी दृष्टि में कृष्ण ने जब चाहा मर्यादा को अपने हित में बदल लिया। विदुर के शब्दों में यह 'कटु निराशा की उद्धत अनास्था' है, जो उसमें जाग गई है। महाभारत का युद्ध जिन परिस्थितियों में हुआ, वह अंध संस्कृति का युग था और विवेकहीनता अपने चरम पर थी –

''संस्कृति थी यह बूढ़े और अंधे की/जिसकी संतानों ने/महायुद्ध घोषित किए/जिसके अंधेपन में मर्यादा/गलित अंग वेश्या–सी/प्रजाजनों को भी रोगी बनाती फिरी''[12]

युयुत्सु भी आस्था के प्रश्न से जुझते हैं। युयुत्सु सत्य की पक्षधरता एवं उसके परिणाम की समस्या से ग्रस्त है। युद्धोपरांत वह वापस अपने सगे–सम्बन्धियों से मिलते हैं परन्तु उन्हें घृणा और नफरत का सामना करना पड़ता है। गांधारी के व्यंग्य बाणों से परेशान और आहत होकर वह सोचने लगता है कि अच्छा रहता यदि वह असत्य से समझौता कर लेता। कौरव पक्ष का होते हुए भी युयुत्सु ने सत्य का पक्ष लिया परन्तु सत्य की परिणति असत्य के समान ही लगती है –

''अंतिम परिणति में दोनों जर्जर करते हैं / पक्ष चाहे सत्य का हो / अथवा असत्य का''[13]

युद्धिष्ठिर का अर्द्धसत्य, अश्वत्थामा का बर्बर व्यवहार, हत्याएं और षड्यंत्र आदि घटनाओं के कारण धर्मक्षेत्र–कुरूक्षेत्र में बार–बार धर्म ही खण्डित हुआ है। 'सत्यमेव जयते' जैसी भावना को नष्ट कर दिया गया। गांधारी कहती है –

''मैंने कहा था दुर्योधन से / धर्म जिधर होगा ओ मूर्ख / उधर जय होगी / धर्म किसी ओर नहीं था लेकिन / सब ही थे अंधी प्रवृत्तियों से परिचलित''[14]

अंधायुग में महाभारतकालीन चरित्र आधुनिक भावबोध लिए हुए हैं, जिसमें धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर बीसवीं सदी की युद्धोत्तर पतनोन्मुखी और राजनीतिक दृष्टि से नेतृत्व वर्ग की अंधता और अविवेक के प्रतीक हैं। वैयक्तिगत हितों की रक्षा और उन्हीं के चलते ये अनैतिक और भ्रष्ट हो गए हैं। इनका चारित्रिक पतन हो गया है। देश, समाज और आम जनता से इनका कोई सरोकार नहीं। वृद्ध याचक अपने आपको 'झूठा भविष्य मात्र' मानता है। उसकी भविष्य विद्या झूठी साबित हुई है। विदुर उस आधुनिक तटस्थ बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जो सम्पूर्ण मर्यादा, मानवीय, सामाजिक नैतिक मूल्यों और सत्य को चुपचाप खंडित होते हुए देखता है –

''मैं विदुर हूँ/कृष्ण का अनुगामी, भक्त और नीतिज्ञ/पर मेरी नीति साधारण स्तर की है/और युग की सारी स्थितियां असाधारण है/और अब मेरा स्वर संशयग्रस्त है''[15]

विदुर जैसा नीतिज्ञ भी युगीन परिस्थितियों के आगे घुटने टेक देता है। संजय को सत्य अथवा असत्य का प्रश्न नहीं सताता। वह तटस्थ है और तटस्थता की नीति पर चलने वाले को परिणाम तो भोगना पड़ता है। संजय में आस्था और विश्वास है परन्तु वह इसे युगीन परिस्थितियों के आगे निष्क्रिय और व्यर्थ पाता है –

''पर मैं तो हूं निष्क्रिय/निरपेक्ष सत्य/मान नहीं पाता हूं/बचा नहीं पाता हूं/कर्म से पृथक/खोता जाता हूं क्रमशः/अर्थ अपने अस्तित्व का। ''[16]

तटस्थ तथा निष्पक्ष रहकर, कर्महीन होकर कोई भी मनुष्य युगीन परिस्थितियों के परिणाम से बच नहीं सकता। उसकी अपनी नीति और कर्मठता, मूल्य और मानवता खतरे में पड़ जाती है। युद्धोपरांत आत्महंता, प्रवृतियां और मनोवृत्ति दिखाई पड़ती है। उसमें अश्वत्थामा, संजय, युधिष्ठिर आदि पात्र आत्महत्या को उत्सुक हैं। युयुत्सु आत्महत्या कर लेता है। माता कुंती, गांधारी और धृतराष्ट्र का दावाग्नि में जल मरना तथा कृष्ण (प्रभु) की मृत्यु के पश्चात युधिष्ठिर हिमालय की चोटियों पर गल जाने को तैयार है। युधिष्ठिर विजय को लम्बा, धीमा तथा तिल–तिलकर फलीभूत होने वाला आत्मघात मानते हैं। कृपाचार्य युयुत्सु की आत्महत्या को पूरी संस्कृति और समाज के लिए घातक मानते हैं –

''यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित/इस पूरी संस्कृति में/दर्शन में, धर्म में, कलाओं में/शासन व्यवस्था में/आत्मघात होगा बस अन्तिम लक्ष्य मानव का''[17]

अंधायुग में वर्णित विभिन्न पात्रों के माध्यम से आधुनिक जीवन की समस्याओं का चित्रण हुआ है। सभी पात्र और स्थितियां प्रतीकात्मक है। ज्वालाप्रसाद खेतान के शब्दों में – ''अंधायुग के अधिकांश पात्र निश्चित ऐतिहासिक चरित्र होते हुए भी विशिष्ट मानसिक प्रवृत्तियों, दृष्टिकोणों एवं अन्तर्ग्रंथियों के प्रतीक है।''[18] वर्तमान समय में, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यही आत्महंता और आत्मघाती मानवीय मनोवृत्ति और संस्कृति देखने को मिल रही है। दिन पर दिन विभिन्न देशों, राष्ट्रों और समाजों में अशांति और असंतोष बढ़ता जा रहा है। मानवीय जीवन का कोई भी क्षेत्र अब इनसे अछूता नहीं रहा है। व्यास के मुख से अश्वत्थामा को दी गई चेतावनी परमाणु बम से होने वाले विनाशकारी परिणामों को ही दर्शाती है –

''यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नरपशु/तो आनेवाली सदियों तक/पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी/शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुंठाग्रस्त/सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी''[19]

जिस प्रकार महाभारत के पात्र विवेकहीन और अंधे है, ठीक उसी प्रकार वर्तमान समय की राजसत्ताएं हैं, जो जनता के हित की नहीं, अपने स्वार्थों की सिद्धि में लगी हुई है –

''उस दिन जो अंधा युग अवतरित हुआ जग पर/बीतता नहीं रह–रहकर दोहराता है/हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं/हर क्षण अंधियारा गहरा होता जाता है।''[20]

वर्तमान समय में विश्व में हो रहे एक–दूसरे के खिलाफ युद्ध तथा गृहयुद्ध जैसी स्थितियों का व्यास जैसे कितने ही विद्वान विरोध करते हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक नाम चॉमस्की ने अफगानिस्तान पर हमले की निंदा की। इसी प्रकार भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों के विभिन्न विद्वान एक–दूसरे के प्रति–विरोधी रवैये की निंदा कर, आपसी संबंध सुधारने की बात कहते हैं। कुछ राजसत्ताएं, सरकार और बुद्धिजीवी विद्वान संजय और विदुर की भांति तटस्थता की नीति अपनाकर अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते। समाज को रोशनी और मार्ग नहीं दिखाते बल्कि उन्हें अपने हाल पर छोड़ देते हैं। प्रहरियों के संवादों के माध्यम से आधुनिक मानव के यांत्रिक जीवन की दुर्दशा, अर्थहीनता और व्यर्थता के संकेत मिलते हैं। युद्ध के परिणामों को भोगते हुए इन प्रहरियों की पीड़ा वैयक्तिक न होकर सामाजिक है। यह उस आम आदमी के प्रतीक है, जो केवल अपनी आजीविका कमाने और अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए शासकों की आज्ञा का पालन करते हैं, इनके अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं है। सत्ता और शासन चाहे जैसे हो, इनके कार्यों और परिस्थितियों में कोई अंतर नहीं आता। अपने शासकों द्वारा थोपे गए सभी निर्णयों का परिणाम यही आम आदमी भोगता हैं।

परम्परागत रूप में कृष्ण का व्यक्तित्व आस्था, विश्वास का प्रतीक है। इस गीतिनाट्य में कृष्ण का व्यक्तित्व ईश्वरत्व के गुणों से युक्त नहीं है। उनका ईश्वरीय रूप नहीं बल्कि मानवीय रूप प्रबल हो उठा है। ज्यादातर सभी पात्रों की आस्था

और विश्वास झूठे पड़ चुके हैं, जर्जर हो चुके हैं। गांधारी की दृष्टि में कृष्ण ने अपनी 'प्रभुता का दुरुपयोग' किया है। वह कृष्ण को शाप भी देती है –

''प्रभु हो या परात्पर हो/कुछ भी हो/प्रभु हो/सारा तुम्हारा अंश/इसी तरह पागल कुत्तों की तरह/एक दूसरे को परस्पर फाड़ खाएगा/तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद/किसी घने जंगल में/साधारण व्याघ्र के हाथों मारे जाओगे/पर मारे जाओगे पशुओं की तरह''[21]

कृष्ण ने इस शाप को स्वीकार किया। यहां कहीं न कहीं कर्मों और कार्यों के प्रतिफल की बात स्वीकार की गई है। यहां 'जैसी करनी वैसी भरनी' वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। इसीलिए मानव को अपने कार्यों का बोध एवं चुनाव सोच–समझकर करना चाहिए क्योंकि उनका भोक्ता उसे स्वयं बनना पड़ेगा। सभी मनुष्यों को अपने कर्त्तव्य और दायित्व बोध को समझना होगा। कृष्ण को पहली बार इस तरह से साहित्य में वर्णित किया गया है। कृष्ण की मृत्यु नीत्से की घोषणा 'ईश्वर मर गया है और हमने उसे मारा है' को ध्वनित करती है। नाटक के पशुता का उदय, प्रभु की मृत्यु, पंख, पहिए और पट्टियां, आदि शीर्षक आधुनिक भावबोध के द्योतक है। धर्मवीर भारती पर अनास्थावादियों का प्रभाव लक्षित होता है।

अंधायुग में अप्रत्यक्ष रूप से शासन, सत्ता और शस्त्रीकरण की समस्या और प्रश्नों को उठाया गया है। जहां सत्ता है, वहीं शक्ति है, जहां शक्ति है। वहां उसका दुरुपयोग है। खासकर वहां, जहां सत्ता के केन्द्र में एक व्यक्ति अथवा परिवार हो। मनुष्य सत्ता प्राप्ति के लिए भाई–भतीजावाद में उसी प्रकार लिप्त हो जाता है जैसे धृतराष्ट्र नामक पात्र। वह विवेकहीन होकर अपने प्रिय दुर्योधन को सिंहासन पर बैठाना चाहता था, चाहे उसके लिए कितना भी अमर्यादित आचरण क्यों न करना पड़े। उसके लिए नैतिकता और मूल्यों का कोई अर्थ नहीं रह गया था –

''एक काले बिन्दु से/मेरे मन ने सारे भाव किए थे विकसित/मेरी सब वृत्तियां उसी से परिचालित थी/मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म/बिल्कुल मेरा ही वैयक्तिक था।/उसमें नैतिकता का कोई मापदंड था ही नहीं/कौरव जो मेरी मांसलता से उपजे थे/वे ही थे अंतिम सत्य/मेरी ममता ही वहाँ नीति थी/मर्यादा थी''[22]

किसी भी राजा अथवा नेतृत्वधारी की नीतियां यदि वैयक्तिक होगी, तो वहां महाभारत होना तय है। महाभारत होगा तो विनाश भी होगा। वर्तमान समय में शक्ति संतुलन के नाम पर विश्व के सभी देश शस्त्रों, हथियारों के निर्माण पर जोर दे रहे हैं। यह शस्त्र और हथियार शक्ति प्रदर्शन का माध्यम बन रहे हैं। इससे अन्य देशों में भय और आशंका का माहौल बन जाता है। विश्व की शांति के लिए खतरा उत्पन्न हो रहा है। शस्त्रीकरण की इसी समस्या को प्रहरियों के संवादों के माध्यम से उठाया गया है–

''युद्ध हो या शांति हो/रक्तपात होता है/अस्त्र रहेंगे तो/उपयोग में आयेंगे ही/अब तक वे अस्त्र/दूसरों के लिए उठते थे/अब अपने ही विरूद्ध काम आयेंगे।''[23]

वर्तमान समय में विश्व के कई देशों में यही देखने को मिल रहा है। विभिन्न देशों के बीच युद्ध और गृहयुद्ध की आशंका बढ़ रही है। विश्व की शांति और मानवता का भविष्य खतरे में है। भविष्य की चिंता का प्रश्न अंधायुग की प्रमुख समस्याओं में से एक है। वृद्ध याचक और कृष्ण के माध्यम से उसका समाधान बताने का भी प्रयास किया गया है –

''जब कोई भी मनुष्य/अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को/उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है/नियति नहीं है पूर्व निर्धारित/उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है''[24]

मनुष्य अपने जीवन में विभिन्न चुनाव करता है। किसी भी स्थिति, परिस्थिति में सही–गलत के बीच चुनाव करता है। सही और गलत का आधार मानवीय विवेक पर निर्भर करता है। उसका यही चुनाव उसके भविष्य का निर्माता बन जाता है। इसीलिए चुनाव महत्वपूर्ण है, उससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण विवेकपूर्ण होकर चुनाव करना है। यदि हमारा चुनाव या निर्णय आवेग में, क्रोध में लिया जाता है तो उसका परिणाम भी भोगना पड़ता है, इसीलिए सोच–समझकर चुनाव करना चाहिए अथवा निर्णय लेना चाहिए। यह निर्णय या चुनाव उसका अपना दायित्व और कर्त्तव्य बनेगा –

''मेरा दायित्व वह स्थिर रहेगा/हर मानव मन के उस वृत्त में/जिसके सहारे वह/सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए/नूतन निर्माण करेगा पिछले ध्वंसों पर/मर्यादा युक्त आचरण में/नित नूतन सर्जन में/निर्भयता के/साहस के/ममता के/रस के/क्षण में/जीवित और सक्रिय हो उठूंगा मैं बार–बार।''[25]

व्यास और कृष्ण दोनों ही पात्र भविष्य के विषय में चिंता करते हैं, जो व्यक्ति व्यक्तिगत हितों और स्वार्थों से ऊपर होता है वही समष्टिगत हित की बात करता है। सुरेश गौतम के शब्दों में – ''सर्वत्र अनास्था, युद्ध संस्कृति तथा आत्मघाती मनोवृति से निर्मित 'अंधायुग' का परिवेश सत्य, मर्यादा तथा दायित्व के प्रश्नों को उभारता है।''[26] यहां कृष्ण की मृत्यु ईश्वरत्व की समाप्ति के साथ–साथ मनुष्यत्व के दायित्व बोध का प्रतीक बन जाती है। वर्तमान समय में होने वाले युद्ध किसी नैतिकता और सत्य की प्राप्ति के लिए नहीं लड़े जा रहे हैं– बल्कि व्यक्तिगत स्वार्थ केन्द्र में है। लेखक सामाजिक मूल्यहीनता की स्थिति को दिखाना चाहते हैं। अंततः कहा जा सकता है कि इस नाटक में दिखाई गई यह मूल्यहीनता की स्थिति सम्पूर्ण मानवजाति के लिए और भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए एक चेतावनी है। यदि मनुष्य के लोभ,

लालच, स्वार्थ, अति महत्वकांक्षा इसी प्रकार बढ़ते गए तो वह दिन दूर नहीं, जब पूरी मानवजाति का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। अतः वर्तमान युग में यह गीतिनाट्य पुनः सार्थक हो उठा है।

संदर्भ सूची

1. मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, संस्करण, 1960, पृ. 10.
2. हिन्दी नाटकः सिद्धांत और विवेचन, डॉ. गिरीश रस्तोगी, ग्रंथम् प्रकाशन, संस्करण 1967, पृ. 194.
3. अंधायुग, धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण, 1974, पृ. 6.
4. वही, पृ. 12.
5. अंधायुगः एक सृजनात्मक उपलब्धि, सुरेश गौतम, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली–6, संस्करण 1973, पृ. 85.
6. अंधायुग, पृ. 13
7. वही, पृ. 36–37
8. वही, पृ. 46
9. वही, पृ. 38
10. वही, पृ. 40
11. अंधायुग, एक सृजनात्मक उपलब्धि, पृ. 40
12. अंधायुग, पृ. 15,
13. वही, पृ. 61
14. वही, पृ. 23
15. वही, पृ. 78
16. वही, पृ. 129
17. वही, पृ. 114
18. सर्जन के आयाम, ज्वालाप्रसाद खेतान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, प्रथम संस्करण, 1961, पृ. 153
19. अंधायुग, पृ. 96–97
20. वही, पृ. 134
21. वही, पृ. 104
22. वही, पृ. 21
23. वही, पृ. 26
24. वही, पृ. 26
25. वही, पृ. 131 उपलब्धि, 1973, पृ. 4
26. अंधायुगः एक सृजनात्मक 3